मन्त्र – साधना एवं सिद्धि

'मन्त्र' शब्द का अर्थ है गुप्त परामर्श। यह श्रीगुरुदेव की कृपा से प्राप्त होता है। मन्त्र प्राप्त होने पर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण करके उसे सिद्ध न कर लिया जाय तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिये।* जबतक दीर्घकालतक निरन्तर श्रद्धाभाव से मन्त्र का अनुष्ठान नहीं किया जाता, तबतक प्रेम अथवा ज्ञान के उदय की कोई संभावना नहीं होती। इस अनुष्ठान में कुछ नियमों की आवश्यकता होती है। अतः अनुष्ठान करने से पहले उन्हें जान लेना आवश्यक है। यहाँ संक्षेप में उनका वर्णन किया जायगा।

मन्त्रानुष्ठान के योग्य स्थान

मन्त्रों का अनुष्ठान स्वयं ही करना चाहिये, यही सर्वोत्तम है। अगर यह सम्भव न हो तो परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता, सदाचारी ब्राह्मण अथवा उपयुक्त प्रतिनिधि के द्वारा भी कराया जा सकता है। अनुष्ठान का स्थान निम्नलिखित स्थानों में से कोई होना चाहिये। सिद्धपीठ, पुण्यक्षेत्र, नदीतट, गुहा, पर्वतशिखर, तीर्थ, संगम, पवित्र जंगल, एकान्त उद्यान, बिल्ववृक्ष, पर्वत की तराई, तुलसीकानन, गोशाला (जिसमें बैल न हों), देवालय, पीपल या आँवले के नीचे तथा पानी में मन्त्रानुष्ठान शीघ्र फल देता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, भगवान् शिव, चन्द्रमा, दीपक, जल और गौओं के सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है।

पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहा पर्वतमस्तकम्।
तीर्थप्रदेशाः सिंधूनां संगमः पावनं वनम्।।
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषसद्म शिवालयः।
अश्वत्थामलकीमूलं गोशाला जलमध्यतः।।
शिवस्य सन्निधाने च सूर्याग्न्योर्वा गुरोरपि।
दीपस्य ज्वलितस्यापि जपकर्म्म प्रशस्यते।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 2)

यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करने से चित्त की ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है।[1] ब्रह्मयामल में कहा गया है कि घर से दस गुना गोष्ठ, सौगुना जंगल, हजारगुना तालाब, लाखगुना नदीतट, करोड़गुना पर्वत, अरबोंगुना शिवालय और अनन्तगुना श्रेष्ठ गुरु का सन्निधान होता है। जिस स्थान पर स्थिरता से बैठने में किसी प्रकार की आशंका अथवा आंतक न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, साँप आदि किसी प्रकार का विघ्न न डाल सकते हों, जहाँ के लोग अनुष्ठान के विरोधी न हों, जिस देश में सदाचारी और भक्त निवास करते हों, किसी

---

* **पुरश्चरणहीनस्य मन्त्रसिद्धिर्न जायते।** (पुरश्चर्यार्णव पृ. 413)

1. **अथ वा निवसेत्तत्र यत्र चित्तं प्रसीदति।** (आचारेन्दुः पृ. 123)

प्रकार का उपद्रव अथवा दुर्भिक्ष न हो, गुरुजनों की सन्निधि और चित्त की एकाग्रता सहजभाव से ही रहती हो, वही स्थान जप करने के लिये उत्तम माना गया है।(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 2)

म्लेच्छदुष्टमृगव्यालशङ्कातङ्कादिवर्जिते।
एकान्ते पावने निन्दारहिते भक्तिसंयुते।।
सुदेशे धार्मिके राष्ट्रे सुभिक्षे निरुपद्रवे।
रम्ये भक्तिजनस्थाने निवसेत्तापसप्रिये।।
गुरूणां सन्निधाने च चित्तैकाग्रस्थले तथा।
एषामन्यतमं स्थानमाश्रित्य जपमाचरेत्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 2)

भोजन की पवित्रता

मन्त्र के साधक को अपने भोजन के सम्बन्ध में पहले से ही विचार कर लेना चाहिये; क्योंकि भोजन के रस से ही शरीर, प्राण और मन का निर्माण होता है। जो अशुद्ध भोजन करते हैं, उनके शरीर में रोग, प्राणों में क्षोभ और चित्त में ग्लानि की वृद्धि होती है। ग्लान चित्त में देवता और मन्त्र के प्रसाद का उदय नहीं होता। इसके विपरीत जो शुद्ध अन्न का भोजन करते हैं, उनके चित्त के मल और विक्षेप शीघ्र ही निवृत्त हो जाते हैं।

भोजन में मुख्यरूप से तीन प्रकार के दोष माने गये हैं[1]-जातिदोष, आश्रयदोष और निमित्तदोष। जातिदोष वह है, जो स्वभाव से ही कई पदार्थों में रहता है। इसके उदाहरण में प्याज, लहसुन, सलगम, गाजर, मसूर तथा मद्य-मांसादि को रख सकते हैं। जातिदोष न रहने पर भी व्यक्ति या स्थान के कारण बहुत सी वस्तुएँ अपवित्र हो जाती हैं। उदाहरण के लिये शुद्ध दूध भी यदि शराबखाने या कसाई की दुकान में रख दिया जाय तो वह अपवित्र हो जाता है। यही आश्रयदोष है। इसी प्रकार शुद्ध स्थान में रक्खी हुई शुद्ध वस्तु भी कुत्ते आदि के स्पर्श से अशुद्ध हो जाती है। इस प्रकार के दोष का नाम निमित्तदोष है।

साधक का भोजन इन तीनों दोषों से रहित होना चाहिये। गौ के दूध, दही, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, आँवला, जड़हन धान, जौ, जीरा, नारंगी आदि हविष्यान्न जो विभिन्न व्रतों में उपादेय माने गये हैं, तथा जिस देश में जिनकी पवित्रता शिष्टसम्मत है उस देश में वहाँ के निवासी वही भोजन कर सकते हैं। पुरश्चरणकर्ता को शाक, मूल, फल, हविष्यान्न अथवा दुग्धमात्र का सेवन करना चाहिये।

---

1. 'आचारेन्दुः' तथा वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः में कुल 6 प्रकार के दोष गिनाये गये हैं-

जातिदुष्टं क्रियादुष्टं कालाश्रयविदूषितम्।
संसर्गाश्रयदुष्टं च सहल्लेखं स्वभावतः।।

(आचारेन्दुः पृ. 288 तथा वीरमित्रोदयः अह्निकप्रकाशः पृ. 511)

शाकं मूलं फलं भक्ष्यं हविष्यं शक्तवोऽथ वा।
अथ वा क्षीरमात्रं स्यात् पुरश्चरणवृत्तये।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 423)

मधु, खारी नमक, मांस, लहसुन, तेल, पान, गाजर, उड़द, अरहर, मसूर, कोदो, चना, बासी अन्न, रूखा अन्न और वह अन्न, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, नहीं खाना चाहिये। काँसे के बर्तन में भी नहीं खाना चाहिये।

क्षारं च लवणं मांसं गृञ्जनं कांस्यभोजनम्।
माषाढकीमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि।।
अन्नं पर्युषितं चैव निःस्नेहं कीटदूषितम्।
.....।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 तथा इसी आशय का श्लोक पुरश्चर्यार्णव पृ. 425 पर भी मिलता है।)

जप–संबंधी कुछ आवश्यक बातें

यथाशक्ति तीनों समय, दो समय अथवा एक समय स्नान, सन्ध्या और इष्टदेव की पूजा अवश्य करनी चाहिये। स्नान-तर्पण किये विना, अपवित्र हाथ से, नग्न-अवस्था में अथवा सिर पर वस्त्र रखकर जप करना निषिद्ध है।

अस्नातस्य फलं नास्ति न चातर्पयतः पितॄन् ।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 464)

अपवित्रकरो नग्नः शिरसि प्रावृतोऽपि वा ।
प्रलपन्प्रजपेद्यावत्तावन्निष्फलमुच्यते ।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 468)

जप के समय माला पूरी हुए विना बातचीत नहीं करनी चाहिये। जप समाप्त करने और प्रारंभ करने से पूर्व आचमन कर लेना चाहिये। यदि जप करते समय मुख से एकाध शब्द बोल दिया जाय तो एक बार प्रणव का उच्चारण कर लेना चाहिये। यदि वह शब्द कठोर हो तो प्राणायाम भी करना आवश्यक है। यदि कहीं बहुत बात कर ली जाय, तो आचमन तथा अंगन्यास करके पुनः माला आरम्भ करनी चाहिये। छींक एवं अस्पृश्य स्थानों का स्पर्श हो जाने पर भी यही विधान है। जप करते समय यदि शौच, लघुशंका आदि का वेग हो तो उसका निरोध नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसी अवस्था में मन्त्र और इष्ट का चिन्तन तो होता नहीं, मल-मूत्र का ही चिन्तन होने लगता है। ऐसे समय का जप-पूजनादि अपवित्र होता है। मलिन वस्त्र, केश और मुख से जप करना शास्त्र विरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं– आलस्य, जँभाई, नींद, छींक, थूकना, डरना, अपवित्र अंगों का स्पर्श और क्रोध।(अनुष्ठान प्रकाश पृ. 6)

मलिनांबरकेशादिमुखदौर्गन्ध्यसंयुतः।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 468)

आलस्यं जृम्भणं निद्रां क्षुतं निष्ठीवनं भयम्।
नीचांगस्पर्शनं कोपं जपकाले विवर्जयेत्।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 466)

ध्यान, जप, पूजा, होम तथा मन्त्रसिद्धि के लिये अंगन्यास आदि करने आवश्यक हैं। इनके अभाव में जपादि का फल प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार ऋषि, छन्द, देवता आदि का विन्यास किये विना अगर जप किया जाय तो उसका तुच्छ फल होता है।

ध्यानं जपार्चना होमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी।।

(आचारेन्दुः पृ. 124 तथा थोड़े अन्तर के साथ पुरश्चर्यार्णव पृ. 187)

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा।
जपः संसाधितोऽप्येष तत्र तुच्छफलं भवेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 124)
ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत्। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 184)

अतः जप से पूर्व मन्त्रों के ऋषि, छन्द एवं देवता के उच्चारण के बाद ऋषि, छंद एवं देवताओं का न्यास करना चाहिये। जप का पुरश्चरण करनेवाले के लिये रुद्राक्ष की माला को सर्वोत्तम बताया गया है। एक सौ आठ दानेवाली माला को उत्तम माना गया है।(आचारेन्दुः पृ. 125)

जप में न बहुत जल्दी करनी चाहिये और न बहुत विलम्ब। गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, अर्थ न जानना और बीच-बीच में भूल जाना– ये सब मन्त्र-सिद्धि में बाधक हैं। जप के समय यह चिन्तन रहना चाहिये कि इष्टदेवता, मन्त्र एवं गुरु एक ही हैं। जबतक जप किया जाय, यही बात मन में रहे। पहले दिन जितने जप का संकल्प किया जाय, उतना ही जप प्रतिदिन होना चाहिये। उसे घटाना-बढ़ाना ठीक नहीं।

एवमुक्तविधानेन विलम्बत्वरितं विना।
उक्तसंख्यं जपं कुर्यात्पुरश्चरणसिद्धये।।
देवतागुरुमन्त्राणामैक्यं संभावयन्धिया।
जपेदेकमनाः प्रातःकालान्मध्यंदिनावधि।।
यत्संख्यया समारब्धं तत्कर्तव्यं दिने दिने।
यदि न्यूनाधिकं कुर्याद् व्रतभ्रष्टो भवेन्नरः।।

(आचारेन्दुः पृ. 123 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 465-466)

मन्त्र-सिद्धि के लिये बारह नियम हैं– 1-भूमिशयन, 2-ब्रह्मचर्य, 3-मौन, 4-गुरुसेवन,

5 – त्रिकालस्नान, 6 – पापकर्मपरित्याग, 7 – नित्यपूजा, 8 – नित्यदान, 9 – देवता की स्तुति एवं कीर्तन, 10 – नैमित्तिक पूजा, 11 – इष्टदेव एवं गुरु में विश्वास तथा 12 – जपनिष्ठा। जो इन नियमों का पालन करता है, उसका मन्त्र सिद्ध ही समझना चाहिये।

भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्यानसूयता (मौनमाचार्यसेवनम्)।
नित्यं त्रिषवणं स्नानं क्षुद्रकर्मविवर्जनम्।
नित्यदानं नित्यपूजा देवतास्तुतिकीर्त्तनम्।।
नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः।
जपनिष्ठा द्वादशते धर्माः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 5 – 6 तथा थोड़े अन्तर के साथ पुरश्चर्यार्णव पृ. 465 पर)

किसी भी अनुष्ठान के समय शपथ लेने से सब निरर्थक हो जाता है। अनुष्ठान आरम्भ कर देने पर यदि मरणाशौच या जननाशौच पड़ जाय तो भी अनुष्ठान नहीं छोड़ना चाहिये। 'निर्णय – सिन्धुः' में 'बहुकालिकसंकल्पादौ विचारः' के अन्तर्गत कहा गया है कि –

बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि।
सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति।।[1]

अर्थात्– यदि पहले बहुकालिकव्रत का संकल्प ग्रहण किया जा चुका हो तो वह व्रत सूतक या मरण में दूषित नहीं होता।

पुरश्चर्यार्णव पृ. 550 में कहा गया है कि पुरश्चरण के आरंभ हो जाने पर सूतक – पातक नहीं लगता बल्कि पुरश्चरण को रोक देने पर दोष होता है।

पुरश्चरण आरब्धे सूतकादिः पतेत चेत्।
आरब्धं न परित्याज्यमन्यथा दोषभाग्भवेत्।
यज्ञव्रतविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
आरब्धे स्तकं न स्यादनारम्भेथ सूतकम्।।

इसी प्रकार अनुष्ठान का संकल्प लेनेवाली नारियों को यदि बीच में रजोधर्म हो तो उससे उनका व्रत या जप खंडित नहीं होता। ऐसी स्थिति में उस व्रत या जप को अपने प्रतिनिधि द्वारा करवा देना चाहिये।

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्।

1. निर्णयसिन्धुः, संपादक, दौलतराम गौड़, प्रकाशक, ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स बुक्सेलर, वाराणसी, संवत् 2027, प्रथम खण्ड, पृ. 57

न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन।। इति,
तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम्।[1]

स्कन्दपुराण में लिखा है– 'नम्रता से संयुक्त हो पुत्र, भगिनी या भाई को तथा इन सबके अभाव में किसी दूसरे ब्राह्मण को प्रतिनिधि रूप से नियुक्त करें।'

पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा।
एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्।।[2]

पुनः मदनरत्न में लिखा है– 'पति, पुत्र, पुरोहित, भाई, पत्नी और मित्र ये सब यात्रा तथा धर्मकार्य में प्रतिनिधि होते हैं। हे महादेवि! इनके द्वारा किया हुआ कर्म अपने ही करने के तुल्य होता है।'

भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखाऽपि च।
यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः।।
एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्।[3]

मन्त्रसिद्धि के लिये जात-सूतक और मृत-सूतक दोनों को ही भंग करना पड़ता है। अर्थात् इन दोनों सूतकों को निष्प्रभावी किये बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होते। इन्हें भंग करने की विधि यह है कि जप के प्रारम्भ में तथा जप की समाप्ति पर एक सौ आठ बार अथवा असमर्थ होने पर सात बार ओंकार से पुटित करके अपने इष्ट मन्त्र का जप कर लेना चाहिये। (मन्त्रमहोदधिः, प्रस्तावना पृ. 37)

मन्त्र का अनुष्ठान करनेवाले को अपने आसन, शय्या तथा वस्त्र आदि को शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिये। गीत एवं वाद्य आदि का श्रवण, नृत्यदर्शन, उबटन, इत्र, फूल-माला का उपयोग और गरम किये गये जल से स्नान नहीं करना चाहिये।

वर्जयेद्गीतवाद्यादि श्रवणं नृत्यदर्शनम्।
अभ्यङ्गं गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च।।
त्यजेदुष्णोदकस्नानम्.....। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 466-467)

एक वस्त्र पहनकर अथवा बहुत वस्त्र पहनकर एवं पहनने का वस्त्र ओढ़कर और ओढ़ने का वस्त्र पहनकर जप नहीं करना चाहिये। सोकर, बिना आसन के, चलते या खाते समय, बिना माला ढके और सिर ढककर जो जप किया जाता है, अनुष्ठान के जप में उसकी गिनती नहीं होती। जिसके चित्त में व्याकुलता, क्षोभ एवं भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीर में पीड़ा हो, स्थान अशुद्ध एवं अन्धकाराच्छन्न हो, उसे वहाँ जप नहीं करना चाहिये। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना

1. निर्णयसिन्धुः पृ. 57
2., 3., वही पृ. 58

निषिद्ध है।[1]

नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 468)
अनासनः शयानो वा गच्छन्भुञ्जान एव वा।
अप्रावृतौ करौ कृत्वा शिरसा प्रावृतोऽपि वा।।
चिन्ताव्याकुलचित्तो वा क्षुब्धो भ्रान्तः क्षुधान्वितः। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 470)
रथ्यायामशिवस्थाने न जपेत्तिमिरालये।।

(पुरश्चर्यार्णव पृ. 468 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 6 पर नीचे की सभी चारों पंक्तियाँ उपलब्ध)

मन्त्रजप से पहले तथा मन्त्रजप समाप्त करने से पहले तीन-तीन प्राणायाम कर लेना चाहिये। प्राणायाम की साधारण विधि यह है कि चार मन्त्र से पूरक[2], सोलह मन्त्र से कुम्भक[3] और आठ मन्त्र से रेचक[4] करना चाहिये। जप पूरा हो जाने पर उसको तेजःस्वरूप ध्यान करके इष्ट देवता के दाहिने हाथ में समर्पित कर देना चाहिये। यदि देवी का मन्त्र हो तो बायें हाथ में समर्पण करना चाहिये। प्रतिदिन अथवा अनुष्ठान के अन्त में जप की संख्या का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश अभिषेक और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये।[5] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 7)

होम, तर्पण आदि में से जो अंग पूरा न किया जा सके, उसके लिये और भी जप करना चाहिये। होम न कर सकने पर ब्राह्मणों के लिये होम की संख्या से चौगुना, क्षत्रियों के लिये छगुना, वैश्यों के लिये आठगुना जप करने का विधान है।

स्त्रियों के लिये वैश्यों के समान ही समझना चाहिये। शूद्र यदि किसी वर्ण का आश्रित हो, तब

---

1. ये सब नियम मानस जप के लिये नहीं हैं। शास्त्रकारों ने कहा है-

अशुचिर्वा शुचिर्वाऽपि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि। मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैवं सदाऽभ्यसेत्।।
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 469)

अर्थात्-'मन्त्र के रहस्य को जाननेवाला जो साधक एकमात्र मन्त्र की ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, मन्त्र का अभ्यास कर सकता है। मानस जप में किसी भी समय और स्थान को दोषयुक्त नहीं समझा जाता।'

2. श्वँास लेना, 3. श्वँास रोके रहना, 4. श्वँास छोड़ना ।

5. मन्त्रों के पुरश्चरण के पाँच अंग इस प्रकार हैं-जप, होम, तर्पण, मार्जन तथा विप्रभोजन। जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा मार्जन का दशांश विप्रभोजन कहा गया है। अथवा अपनी सामर्थ्य के अनुसार होम, तर्पण आदि अंगों के विकल्प को स्वीकार करे। आचारेन्दुः में कहा है-

जपो होमस्तर्पणं च मार्जनं विप्रभोजनम्। मन्त्रविद्भिस्तु पञ्चाङ्गं पुरश्चरणमीरितम्।।
होमो जपदशांशेन तद्दशांशेन तर्पणम्। मार्जनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन भोजनम्।।

(आचारेन्दुः पृ. 122-123, इसी आशय के श्लोक पुरश्चर्यार्णव पृ. 414 पर भी है।)

तो उसके लिये अपने आश्रय की संख्या ही समझनी चाहिये। यदि वह स्वतंत्र है तो उसे होम की संख्या से दसगुना जप करना चाहिये। अर्थात् एक लाख का अनुष्ठान हो तो होम के लिये भी उसे एक लाख जप करना चाहिये। 'योगिनीहृदय' में यह संख्या कुछ कम करके लिखी गयी है। ब्राह्मणों के लिये होम-संख्या का दुगुना, क्षत्रियों के लिये तिगुना, वैश्यों के लिये चौगुना और शूद्रों के लिये पाँच गुना है।[1]

होमाभावे जपः कार्य्यो होमसंख्या चतुर्गुणः।।
विप्राणां क्षत्त्रियाणां च रससंख्यागुणः स्मृतः।
वैश्यानां वसुसंख्याकमेषां स्त्रीणामयं विधिः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 7 पर सनत्कुमार संहिता का वचन)

होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जपः।
इतरेषां तु वर्णानां त्रिगुणादिः समीरितः।।[2]

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 7 पर योगिनीहृदय का वचन, इसी आशय का श्लोक पुरश्चर्यार्णव पृ. 548 पर भी है।)

अनुष्ठान के पाँच अंग हैं-जप, होम, तर्पण, अभिषेक और ब्राह्मणभोजन। द्रव्याभाव में होम, तर्पण आदि से अशक्त को जपमात्र से सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

यदि पूजाद्यशक्तः स्याद्द्रव्याभावेन सुन्दरि।
केवलं जपमात्रेण पुरश्चर्या विधीयते।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 464)

पुरश्चरण के उपर्युक्त पाँचों अंग पूरा करने का नियम मुख्यतया पुरुषों के लिये हैं न कि स्त्रियों के लिये।

नियमः पुरुषे ज्ञेयो न योषित्सु कदा चन। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 464)

यदि होम, तर्पण और अभिषेक न हो सकें तो केवल ब्राह्मणों के आशीर्वाद से भी काम चल जाता है।[3] स्त्रियों के लिये तो ब्राह्मणभोजन की भी उतनी आवश्यकता नहीं है। उन्हें न्यास, ध्यान और पूजा की भी छूट है, केवल जपमात्र से ही उनके मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं।

न न्यासो योषितां चात्र न ध्यानं न च पूजनम्।
केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्ध्यन्ति योषिताम्।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 464)

---

1. निर्णयसिन्धुः (दौलत राम गौड़ द्वारा संपादित एवं ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी द्वारा संवत् 2027 में प्रकाशित पृ. 118) में कहा गया है कि होम की सामर्थ्य न हो तो होम की संख्या से चतुर्गुण जप करे।

होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्। एवं कृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा।।

2. आचारेन्दुः पृ. 123 पर भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया है।

3. अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 7 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ. 547 पर कहा गया है कि मात्र ब्राह्मण-भोजन से भी अनुष्ठान के शेष अंगों की पूर्ति हो जाती है।

अनुष्ठान में दीक्षासम्पन्न ब्राह्मणों को ही खिलाना चाहिये। अनुष्ठान की पूर्णता गुरु की प्रसन्नता में होती है। अतः मन्त्रसिद्धि के लिये गुरु को संतुष्ट करना आवश्यक है (पुरश्चर्यार्णव पृ. 547)। एक बार एक मन्त्र सिद्ध हो जाने पर दूसरे मन्त्रों की सिद्धि में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं होता, वे निर्विघ्न हो जाते हैं।

कहीं-कहीं पर आता है कि स्त्री एवं शूद्र को ब्राह्मण के माध्यम से हवन करवाना चाहिये क्योंकि उन्हें मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन, करने का अधिकार नहीं है।

स्त्रीशूद्राभ्यां न होतव्यं मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 549)

होमस्तु ब्राह्मणद्वारा स्त्रीशूद्राणां निगद्यते। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 550)

यहाँ मन्त्रोच्चारण का जो निषेध किया गया है वह केवल वैदिक मन्त्रों के सन्दर्भ में ही समझा जाना चाहिये। क्योंकि वैदिकेतर(अर्थात् तान्त्रिक एवं लौकिक) मन्त्रों के उच्चारण का अधिकार शूद्रादि को भी है और वे मन्त्रों द्वारा हवन कर सकते हैं। परन्तु मन्त्र के अन्त में वे स्वाहा शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे।

शूद्राणामधिकारोऽस्मिँस्तान्त्रिके होमकर्मणि।
वह्निजायां परित्यज्य स्वाहान्ते च नमो मतः।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 550)

जप की महिमा एवं भेद

शास्त्रों में जप की बड़ी महिमा गायी गयी है, सब यज्ञों की अपेक्षा जप-यज्ञ को श्रेष्ठ बतलाया गया है। जप-यज्ञ में किसी भी बाह्य सामग्री अथवा(पुष्पादि) हिंसा आदि की आवश्यकता नहीं होती। पद्म एवं नारदीय पुराण में कहा गया है कि अन्य समस्त यज्ञ वाचिक जप की तुलना में सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं हैं। वाचिक जप से सौ गुना उपांशु और सहस्त्रगुना मानस जप का फल होता है।

सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।
उपांशुजपयुक्तस्य शंस्यात् शतगुणो भवेत्।
साहस्रो मानसः प्रोक्तो यस्माद्ध्यानमयो हि सः।।

(वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः पृ. 314)

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 5)

मानस जप वह है, जिसमें अर्थ का चिन्तन करते हुए मन से ही मन्त्र के वर्ण, स्वर और पदों की बार-बार आवृत्ति की जाती है। उपांशु जप में कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानों तक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जप वाणी के

द्वारा उच्चारण है।

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दपदक्षरैः।।
मन्त्रमुच्चारयेद्व्यक्तं जपयज्ञः स वाचिकः।
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्।।
किञ्चिच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः।
धिया यदक्षरश्रेण्यो वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः।

(वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः पृ. 316-317)

तीनों ही प्रकार के जपों में मन के द्वारा इष्ट का चिन्तन होना चाहिये। मन्त्र का जोर-जोर से उच्चारण करके जप करने से वह निष्फल हो जाता है। परन्तु स्तोत्र-पाठ जोर-जोर से उच्चारण करके करना चाहिये। मानसिक स्तोत्र-पाठ निष्फल हो जाता है।

मनसा यः स्मरेत्स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत्।
उभयं निष्फलं याति(देवि) भिन्नभाण्डोदकं यथा।।

(कर्मठगुरौ, मुकुन्द बल्लभ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1994, पृ. 65)

गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति मन ही मन स्तोत्रपाठ तथा जोर-जोर से उच्चारण करते हुए जप करता है, उसे कोई फल नहीं मिलता। काम्यप्रयोगों में केवल मारण में वाचिक जप फलदायक माना गया है। अन्य समस्त प्रयोगों में मानसिक या उपांशु जप करना चाहिये। (मन्त्रमहोदधिः, अनुवादक शुकदेव चतुर्वेदी, प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी, 1981, प्रस्तावना पृ. 28)

सिद्धि की कामना के लिये मानसिक जप, पुष्टि की कामना हेतु उपांशु एवं मारण के लिये वाचिक जप उत्तम बताया गया है।

मानसः सिद्धिकामानां पुष्टिकामैरुपांशुकः।
वाचिको मारणे चैव प्रशस्तो जप ईरितः।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 542)

(उपर्युक्त लेख मुख्यतः गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'कल्याण' के साधनांक, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से संवत् 2008 में प्रकाशित 'अनुष्ठानप्रकाशः' एवं वाराणसी से 2027 में प्रकाशित'निर्णयसिन्धुः' पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

मन्त्र – साधना एवं सिद्धि (क्रमशः)

पिछले लेख में मानस जप को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए उसकी परिभाषा के अन्तर्गत कहा गया है कि इसमें अर्थ का चिन्तन करते हुए मन से ही मन्त्र के वर्ण, स्वर और पदों की बारंबार आवृत्ति की जाती है। मन्त्र साधारण शब्दमात्र नहीं है, उसकी शक्ति दिव्य है; तथापि उसका एक अर्थ भी होता है। वह इष्टदेवता से अभिन्न होने पर भी देवता के स्वरूप का बोध कराता है, इसलिये इष्टदेव का अनुग्रहविशेष ही मन्त्र है। मन्त्र जिस वस्तु का संकेत करता है, साधक को जहाँ ले जाना चाहता है, यदि साधक को भी उस लक्ष्य का पता हो तो साधना में और भी सुविधा हो जाती है। यही कारण है कि शास्त्रों में मन्त्रजप के साथ उसके अर्थ-ज्ञान की भी आवश्यकता बतलायी गयी है और योगदर्शन में तो मन्त्रार्थभावना को ही जप कहा गया है।

'तज्जपस्तदर्थभावनम्' (पातञ्जलयोगसूत्र/समाधिपाद/सूत्र 28)

'मन्त्र' शब्द का धातुगत अर्थ है गुप्त परिभाषण । परन्तु साधक के लिये वह गुप्त नहीं प्रकट होना चाहिये। कुछ बीजमन्त्रों के अर्थ यहाँ प्रकट किये जाते हैं। बड़े मन्त्रों का अर्थ समझना आसान है अतः यहाँ उनकी चर्चा नहीं की जायगी।

हौं–इसको प्रसादबीज कहते हैं। इसमें हकार का अर्थ है 'शिव', औकार का अर्थ है 'सदाशिव' और विन्दु दुःखहरण के अर्थ में है। इसलिये इस बीज का अर्थ है–शिव और सदाशिव की कृपा और प्रसाद से मेरे समस्त दुःख नष्ट हो जायँ।

ह्रीं–ह=शिव; र=प्रकृति; ई=महामाया; नाद=विश्वमाता और विन्दु=दुःखहरण। इस शक्तिबीज अथवा मायाबीज का अर्थ है–शिवयुक्त विश्वमाता महामाया शक्ति मेरे दुःखों का नाश करें।

हूं–ह=शिव; ऊ=भैरव; नाद=सर्वोत्कृष्ट* और विन्दु=दुःखहरण । सर्वश्रेष्ठ असुर-भयंकर भगवान् शिव मेरे दुःखों का नाश करें। इसको वर्मबीज अथवा कूर्चबीज कहते हैं।

क्रीं–'क' का अर्थ है काली, 'र' का अर्थ है ब्रह्म, ईकार का अर्थ है महामाया, नाद का अर्थ है विश्वमाता* और विन्दु का अर्थ है दुःखहरण। इस कालीबीज अथवा कर्पूरबीज 'क्रीं' का अर्थ है-'ब्रह्मशक्तिस्वरूपिणी महामाया कालीमाता मेरे दुःखों का नाश करें।

गं–ग=गणेश और विन्दु=दुःखहरण। इस गणेश बीज का यही अर्थ है कि गणेश भगवान् मेरे दुःखों को दूर करें।

श्रीं–श=महालक्ष्मी; र=धन-सम्पत्ति; ई=तुष्टि; नाद=विश्वमाता और विन्दु=दुःखहरण। इस लक्ष्मीबीज अथवा श्रीबीज का अर्थ है–धन-सम्पत्ति, तुष्टि-पुष्टि की अधिष्ठात्री माता महालक्ष्मी मेरे दुःखों का नाश करें।

---

* मन्त्रमहोदधिः की प्रस्तावना (पृ. 33) में 'नाद' का अर्थ लोकनायक और लोकनायिका लगाया गया है।

ऐं–ऐ=सरस्वती और विन्दु=दु:खहरण। देवी सरस्वती मेरे दु:खों का नाश करें। यह सरस्वती बीज का अर्थ है।

स्त्रीं–स=दुर्गोत्तारण; त=तारक; र=मुक्ति; ई=महामाया; नाद=विश्वमाता और विन्दु=दु:खहरण। दुर्गोत्तारिणी, तारिणी, मुक्तिस्वरूपा, विश्वमाता भगवती महामाया दु:खों से मेरी रक्षा करें। यह वधू-बीज है।

क्लीं–क=कृष्ण, काम या काली, ल=इन्द्र(लोकपाल), ई=महामाया या तुष्टि और विन्दु=दुख:हरण। इस प्रकार इस कृष्णबीज या कामबीज के अर्थ हैं (1) मन्मथ भगवान् कृष्ण मुझे सुख व शान्ति प्रदान करें तथा (2) लोकनायिका महाकाली मुझे सुख व शान्ति प्रदान करें।

इसी प्रकार और भी अनेकों बीज हैं-जैसे आकाश का 'हं', वायु का 'यं', अग्नि का 'रं', जल अथवा अमृत का 'वं', पृथ्वी का 'लं', आदि। उन्हें एकाक्षरी कोष से देख लेना चाहिये। ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मन्त्र न हो। केवल उनका ठीक-ठीक प्रयोग करने की विधि जाननी चाहिये।

परन्तु ये अर्थ तो साधक के लिये भावनाविशेष हैं। मन्त्र के वास्तविक अर्थ तो मन्त्र प्रतिपादित देवता का साक्षात्कार होने पर ही मालूम होते हैं। इसी से सरस्वतीतन्त्र में मन्त्रार्थ का ज्ञान और साक्षात्कार प्राप्त करने की विधि बतलायी गयी है। उसमें कहा गया है कि मूलाधार चक्र में शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ इष्टदेवता और मन्त्ररूप इष्टविद्या का चिन्तन करना चाहिये। आधे मुहूर्ततक ध्यान करके फिर नाभिचक्र में इष्टदेवता और इष्टमन्त्र का चिन्तन करना चाहिये। वहाँ उनका वर्ण रक्त होगा। फिर हृदय में मरकत मणि के समान दोनों का ध्यान होगा और विशुद्धादि चक्रों के क्रम से सहस्त्रार में जाकर ब्रह्मस्वरूप में दोनों एक हो जायँगे, इस स्थिति का अनुभव किया जायगा। इस प्रकार ध्यान करते-करते जब साधक इतना तन्मय हो जायगा कि वह स्वयं मन्त्रदेवतात्मक ब्रह्म से पृथक् नहीं रह जायगा, तब कहीं इस स्थिति के फलस्वरूप मन्त्र का वास्तविक अर्थ अर्थात् लक्ष्यार्थ प्रकट होगा। वास्तव में वही मन्त्रार्थ है। परन्तु एकाएक वह बुद्धिगम्य नहीं हो सकता, इसलिये उस तत्त्वतक पहुँचने की दृष्टि से उपर्युक्त प्रकार के अर्थ कहे जाते हैं। भगवान् शंकर के वचन हैं-

ध्यानेन परमेशानि यद्रूपं समुपस्थितम्।
तदेव परमेशानि मन्त्रार्थं विद्धि पार्वति।। (साधनांक, पृ. 229)

अर्थात् सहस्त्रार में पहुँचकर ब्रह्मस्वरूप का ध्यान करते-करते जो स्वरूप स्वयं प्रकट होता है, वही मन्त्र का अर्थ है। उसी मन्त्रार्थ को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये।

मन्त्रों की कुल्लुका

रुद्रयामल में कहा गया है कि जो व्यक्ति कुल्लुका को जाने विना जप करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्ति एवं बल नष्ट हो जाता है। अत: मन्त्र का जप करने से पहले उसकी कुल्लुका का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये।

सरस्वती-तन्त्र में कहा गया है कि मन्त्रों के जप के पूर्व उसकी कुल्लुका का ज्ञान भी आवश्यक है। जप प्रारम्भ करने के समय जिस मन्त्र का जप करना हो, उसकी कुल्लुका सिर पर स्थापित कर लेनी चाहिये अर्थात् मूर्द्धा में उसका न्यास कर लेना चाहिये। ऐसा करने से जप निर्विघ्न पूरा होता है तथा साधक को सिद्धि मिलती है। कुछ मन्त्रों की कुल्लुका इस प्रकार है।

शिव-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **हौं।**

विष्णु-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **नमो नारायणाय।**

लक्ष्मी-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **श्रीं।**

काली-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **क्रीं हूं स्त्रीं ह्रीं फट्।**

अन्नपूर्णा-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **क्लीं।**

सरस्वती-मन्त्र की कुल्लुका -ॐ **ऐं।**

दूसरे देवताओं के अपने-अपने मन्त्र ही कुल्लुका हैं। परन्तु तारा, छिन्नमस्ता वज्रवैरोचनी, भैरवी, त्रिपुरसुन्दरी, मञ्जुघोषा, भुवनेश्वरी, मातंगी, धूमावती तथा षोडशी आदि के विशेष मन्त्र ही कुल्लुका हैं। इनकी यहाँ चर्चा नहीं की गयी है।

मन्त्रों के सेतु एवं महासेतु

साधक का मन्त्र के साथ सम्बन्ध जोड़नेवाला बीज सेतु कहलाता है। सेतुमन्त्र का जप करने से साधक तान्त्रिक मन्त्र के जप का अधिकारी हो जाता है।

प्रधानतः मन्त्रों का सेतु प्रणव ही है। ब्राह्मण और क्षत्रियों के लिये प्रणव, वैश्यों के लिये 'फट्' और शूद्रों के लिये ह्रीं सेतु है। जप आरंभ करने के पूर्व हृदय में इसका जप कर लेना चाहिये। जप के पहले महासेतु मन्त्र का जप किया जाता है। इसके जप से सभी समय और सभी अवस्थाओं में जप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। त्रिपुरसुन्दरी का महासेतु 'ह्रीं', कालिका का 'क्रीं' तथा तारा का 'हूं' है। तथा अन्य सब देवताओं का महासेतु 'स्त्रीं' है। इसका जप कण्ठदेशस्थित विशुद्धचक्र में करना चाहिये।

मन्त्रों का निर्वाण

पहले प्रणव और उसके पश्चात् **'अ'** इत्यादि से लेकर **'क्ष'** तक समस्त स्वरवर्णों का उच्चारण करके अपना मन्त्र पढ़े। तत्पश्चात् **'ऐं'** तथा समस्त स्वरवर्णों का और अन्त में प्रणव का जप करें। उदाहरण के लिये-

ॐ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ .....क्ष ॐ नमः शिवाय ऐं[1] अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ .....क्ष ॐ।

1. मन्त्रमहोदधिः में **'ऐं'** नहीं जोड़ा गया है।

इस प्रकार सम्पुट करके मणिपूरक चक्र में जप करना चाहिये। इस तरह से जप का ही नाम मन्त्र का निर्वाण है। निर्वाण से मन्त्र के आत्मस्वरूप का बोध हो जाता है तथा वह जाग्रत हो जाता है।

मुखशोधन

मन्त्रविदों का कहना है कि मन्त्र-जप के पूर्व मुखशोधन अवश्य कर लेना चाहिये। क्योंकि अशुद्ध जिह्वा से जप करने से सिद्धि के बदले हानि होती है। जिह्वा पर अनेक प्रकार के मल निवास करते हैं-भोजन का मल, झूठ बोलने और कलह आदि का मल । इनके शोधन के विना जिह्वा मन्त्रोच्चारण के योग्य नहीं होती । इसीलिये शास्त्रों में जिह्वाशोधन की विधि बतलायी गयी है। जिस देवता का मन्त्र जपना हो, उसके अनुसार मुखशोधन-मन्त्र का पहले दस बार जप कर लेना चाहिये। कुछ मन्त्र निम्नलिखित हैं-

दुर्गा=ऐं ऐं ऐं। विष्णु=ॐ ह्वं।

गणेश=ॐ गं। लक्ष्मी=ॐ श्रीं

त्रिपुरसुन्दरी, श्यामा, तारा, बगलामुखी, मातंगी, धूमावती तथा धनदा के विशेष मन्त्र हैं जबकि अन्य सभी देवताओं का केवल ॐकार ही मुखशोधन का मन्त्र है।

प्राणयोग एवं दीपनी

जैसे प्राणयुक्त शरीर ही सचेष्ट होता है, वैसे ही प्राणयुक्त मन्त्र ही सिद्ध होता है। इसकी विधि केवल इतनी ही है कि माया-बीज अर्थात् 'ह्रीं' से पुटित करके अपने मन्त्र का सात बार जप कर लेना चाहिये।

मायाबीजेन पुटितं मूलमन्त्रं जपेत्सुधीः।
सप्तवारं जापात्पूर्वं प्राणयोगरुदीरितः।। (मन्त्रमहोदधिः प्रस्तावना पृ. 36)

जैसे दीपक से घर का अन्धकार दूर होकर उसकी सारी चीजें दीखने लगती हैं, वैसे ही दीपनी क्रिया से मन्त्र प्रकाश में आ जाता है। यह दीपनी क्रिया केवल इतनी ही है कि मन्त्र-जप प्रारंभ करने के पहले मन्त्र को प्रणव से पुटित करके सात बार जप लेना चाहिये।

प्रणवेन मूलमन्त्रस्य पुटितस्य परमेश्वरि।
सप्तवारं जपं संदीपिनीविद्याखिलार्थदा।। (मन्त्रमहोदधिः प्रस्तावना पृ. 37)

मन्त्रों के दोष

हरितत्त्वदीधिति में मन्त्र के आठ दोष गिनाये गये हैं। वे क्रमशः ये हैं-अभक्ति, अक्षरभ्रान्ति, लुप्त, छिन्न, ह्रस्व, दीर्घ, कथन और स्वप्नकथन।

1. **अभक्ति**-मन्त्र को अक्षर और वर्णों की समष्टिमात्र समझना अभक्ति है। मन्त्र देवतास्वरूप है, ऐसा अनुभव करके एक-एक मन्त्र के उच्चारण में परमानन्द का अनुभव करते हुए जो जप करते

हैं, उन्हें बहुत ही शीघ्र सिद्धि मिलती है। परन्तु जो मन्त्र को केवल अक्षर-वर्णमात्र समझते हैं अथवा दूसरे मन्त्र को अपने मन्त्र से श्रेष्ठ समझकर अपने मन्त्र को हीन समझते हैं, उन्हें सिद्धि तो मिलती ही नहीं, विपरीत फल भी मिलता है। इस अभक्ति को दूर करने के लिये उस मन्त्र का बहुत मात्रा में जप करना चाहिये। जब जप, हवन और तपस्या से मन्त्र का देवता प्रसन्न होता है, तब उसमें भक्ति का उदय होता है और भक्ति का उदय होने पर सिद्धिलाभ में विलम्ब नहीं होता।

2. **अक्षरभ्रान्ति**-गुरु अथवा शिष्य के भ्रम-प्रमाद से मन्त्र के अक्षरों में उलट-फेर हो जाना अथवा एक-आध अक्षर बढ़ जाना-यह अक्षरभ्रान्ति है। ऐसा हो जाने पर गुरु से, उनकी अनुपस्थिति में उनके पुत्र से अथवा और किसी साधक से पुनः मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

3. **लुप्त**-मन्त्र में किसी वर्ण की न्यूनता 'लुप्त' दोष है। इस दोष के लिये भी पुनः मन्त्रग्रहण की आवश्यकता है।

4. **छिन्न**-'छिन्न' दोष उसको कहते हैं जिसमें संयुक्त वर्णों में से कोई अंश छूट जाता है। यह दोष भी उपर्युक्त पद्धति से ही दूर होता है।

5. **ह्रस्व**-दीर्घ वर्ण के स्थान में ह्रस्व वर्ण का उच्चारण 'ह्रस्व' नाम दोष है।

6. **दीर्घ**-ह्रस्व वर्ण के स्थान पर दीर्घ वर्ण का उच्चारण करना दीर्घ नामक दोष है।

7. **कथन**-जाग्रत अवस्था में अपना मन्त्र किसी को कह देना 'कथन' नामक दोष है।

8. **स्वप्नकथन**-स्वप्न में अपना मन्त्र किसी को बतला देना 'स्वप्न कथन' नाम का दोष है।

ह्रस्व और दीर्घ दोष का निराकरण तो पूर्वोक्त पद्धति से ही होता है, परन्तु कथन और स्वप्नकथन दोष श्रीगुरुदेव के चरणों में निवेदन करने पर वे जिस प्रायश्चित्त की व्यवस्था करें, उसके अनुष्ठान से होता है। इन आठ प्रकार के दोषों से बचकर ही मन्त्रजप करना चाहिये, तभी सिद्धि होती है।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'कल्याण' के साधनांक और शुकदेव चतुर्वेदी द्वारा अनुवादित तथा प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी द्वारा 1981 में प्रकाशित 'मन्त्रमहोदधिः' पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀

जो नीतिशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करके प्रजा से मनमाना कर वसूल करते हैं और अकारण ही दण्ड देते हैं, उन्हें नरक में पकाया जाता है। जिस राजा के राज्य में प्रजा सूदखोरों, अधिकारियों, चोर एवं तस्करों द्वारा पीड़ित होती है, उसे नरकों में पकना पड़ता है।

यश्चोदितमतिक्रम्यस्वेच्छया आहरेत्करम्।।
नरकेषुसपच्येतयश्चदंडंवृथानयेत्।
उत्कोचकैरधिकृतैस्तस्करैश्चप्रपीड्यते।।
यस्यराज्ञः प्रजाराज्ये पच्यतेनरकेषुसः। (पद्मपु. भूमिखण्ड 67/93-95)